

श्री पञ्चस्तवी

मूल तथा हिन्दी भाषा
लोक उपयोगी

अनुवादक
राजानक लम्बोदर [वारयाला]

मगर १९९७ बिकरमी

नवम्बर १९४० ईसवी

Printed at
Kashmir Standard Press
Srinagar Kashmir

1st Addition 1000 Price 4 Annas.

ॐ

उपक्ष्मातः

बडे हर्ष का विषय है। कि पराचीन दुर्बोधि शक्ति·प्रभाव वर्धिनी पंचस्तवी एक लघु पुस्तक है जो सब महानुभावों को विदित ही है। इस का अर्थ यद्यपि दुर्ज्ञेय है। तो भी भक्ति जन·बडे·प्रेम·से प्रति दिन जगत्माता के पास अथवा अपने २ घरों में इस का पाठ करके परमानन्द प्राप्त करते हैं। परंतु खेद के साथ यह·कहना·पडता है। कि इसकी रचना काल से आज तक बडे २ धुरन्धर विद्वानों की अस्तित्व में भी किसी मान्यवर विद्वान ने इस·के अर्थ ·प्रकटानें में लेखनी उठाने का साहस न किया। यद्यपि बडे प्रौढ विद्वानों की सत्ताकाल में मेरा यह प्रयास उपहासास्पद ही होगा तथापि·इस·अल्पज्ञ ने यथा मति जगदऽम्बा की कृपा से प्रेरित होकर हिन्दी·भाषा·में अर्थ प्रकाशने की लेखनी उठाई। यद्यपि मादृश अल्प बुद्धिमानों·का·टूटा फूटा अर्थ प्रकाशन सछ मुछ पंडितों के सामने सूर्य को दीपक·दिखाना है। तथापि विज्ञ जन अपनी बुद्धिमता की ओर ध्यान· करते· हुए भगवती जगत्माता के प्रेम में मग्न होकर मेरे क्षुद्र सेवा रूप परिश्रम को सफल करदेने में ज़रा भी संकोच न करेंगे। संभव·है·कि·दुर्बोध श्लोकों के अर्थ के प्रकाशने·में कहीं २ त्रुटियां अवश) रही होंगी; तु उन को करुणानुसार पाठक स्वयं शुद्ध कर देवें। कितना ही अच्छा होगा, यदि वह महानुभाव मुझे भी सूचन करें। मेरी अत्यन्त इच्छा

है कि मैं भी सच्चे और शुद्ध पदार्थ से लाभ उठावों । और दूसरे सस्करण में ठीक २ अर्थ प्रकटी भाव में लाकर सब भक्ति जन भी शुद्ध अर्थ समझने से लाभ उठाएँगे । यथाः—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सत्जनाः ॥

राजानक लम्बोदर (तारवाला)
निवासी श्रीनगर (काश्मीर)
संवत्सर विकरम १९९७ मगर महीना

ॐ

पञ्चस्तवी ।

लघुस्तवः प्रथमः ।

ॐनमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां ।
शौक्लीं कांत मनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ॥
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता ।
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥१॥

इन्द्र धनुष जैसी दीप्ति जिसके ललाट के मध्य में प्रकाशित है॥ चंन्द्रमा की भांति जिसके शिर के चारों ओर श्वेतवर्ण चन्द्रिका चमकती है ॥ और जिसके हृदय में प्रति दिन चमकती हुई सूर्य की जैसी दीप्ति शोभित है ॥ वही यह माता त्रिपुरा हमारे हृदय गत त्रिमलात्मकपापों को तीनपदों के अनुग्रह से शीघ्रही नाशकरे ॥ पहले तीन पदों में तीन बीजों के नाम स्थित हैं॥ और इनका उच्चारण गुर मुख से सुन कर फल दायक होता हैं ॥ १ ॥

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पार्धिनी ।
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ॥
शक्ति कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा ।
ज्ञात्वेथं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥ २ ॥

जो शक्ति कला तुम्हारे प्रथम वाग्बीज (ऐ) में ठहरी हुई है ॥ उसका हम साधक राँगा नाम बेल की भांति विकसी हुई सूक्ष्म तार से स्पर्धा (मुकाबला) करती हुई सदा मानते हैं ॥ और उसी कुण्डलिनी शक्ति को जो मनुष्य जगत की उत्पत्ति के व्यापार में तत्पर ऐसा जानते हैं ॥ वह दुबारा माता के उद्धर में गर्भ नहीं पाते है ॥ किन्तु मोक्षपद को पाते हैं ॥ २ ॥

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं ।
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दु विनाप्यक्षरम् ॥
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे ।
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥३॥

हे वरदे जिस किसी पुरुष ने किसी भयदायक वस्तु को अचानक देखकर बिन्दु (अनुस्वार) रहित ऐ ऐ इस बीजाक्षरको तत्क्षणात् उच्चारण किया तो हे देवि! उस पुरुष को निश्चय करके शीघ्रही तुम्हारे अनग्रह के उदय होने पर अच्छी वचन रुपी अमृतधारा यें मुख कमल से निकल जाती हैं अर्थात आपकी दया दृष्टि से वह अलौकिक विद्वान बनता है

यन्नित्ये ! तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं ।
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ॥
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः ।
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

हे नित्ये ! सदा स्वरूप में रहने वाली जो तुम्हारा दूसरा मंत्राक्षर "काम राज बीज" क्लीं नाम का है ॥ वही ककार लकार रहित सारस्वत बीज कहलाता है ॥ इस बीज को कोई विरल बुद्धिमान पुरुष ही जानता है ॥ ब्रह्म वित ब्रह्मण पर्व दिनों पर सत्य तपसा नाम के ऋष की कीर्तना करते हुये ओंकार के बदले बडी प्रशंसा से सारस्वत बीज का उच्चार करते हैं ॥ अर्थात् ओंकार के स्थान पर सरस्वती बीज का ही उच्चारण करते हैं ॥ ४ ॥

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै– ।
स्तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम् ॥
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये ।
गोशब्दो गिरि वर्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

बुद्धिमानोंने जिस तुम्हारे चंद्रमा के समान प्रकाशमान तीसरे बीज के प्रभाव को वाणी से शीघ्र प्रवृत्त करनेके लिये देखा है। उसको मैं नमस्कार करता हूं॥ वाडवाग्नि भी सरस्वती नदी केसाथ मिलकर पानी की ठण्डक दूर करने के तत्पर होवे परन्तु गो शब्द का अर्थ वाणी है। जो नित्य योग वा ध्यान के विना ही सिद्धि देने वाला है। अथवा (औः) बीज सरस्वती बीज जान कर उच्चारण किया जाय तो बुद्धि के जाडय का नाश हो जाता है ॥ ५ ॥

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं ।
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ॥
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं ।
जप्तं वा सफलीकरोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥६॥

हे देवि! तुम्हारे शुद्ध बीज को एक एक करके (क से लेकर क्ष तक) व्यञ्जन सहित वा व्यंजन रहित (स्वरमय) अ से लेकर अः तक इकट्ठा वा पृथक पृथक, क्रम सहितवा व्युत्क्रम विपरीत क्रम से जो ठहरा हुवा हो। जिस जिस कामना को जिस किसी ने जिस जिस अपेक्षा से वा जिस जिस विधि से स्मरण किया वा जपा, उन मनुष्यों को वह वह कामना ततक्षण सफल करदेती हो ॥ ६ ॥

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे ।
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ॥
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं ।
ये त्वामम्ब! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः॥७॥

हे माता! जो पुरुष तुमको अभय देने हारी पुस्तक वाम हाथ में लिये और भक्तों के मनोरथ पूरण करने वाली अक्षमाला दक्षिण हाथ में लिये; कर्पूर और कुन्द पुष्प की भांति धवल विकसित कमल के पत्र जैसे मनोहर नेत्र वाली; प्रकाश और अहूलादमय दृष्टि वाली इस प्रकार जो मन से स्मरण नहीं करते हैं। उन पुरुषों को कवित्व शक्ति कहां से प्राप्त होती है। अर्थात नहीं होती है ॥ ७ ॥

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्टाभिरामप्रभां ।
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजा–
त्तेषां भारति! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥ ८ ॥

जो भक्त तुमको श्वेत कमलों के समूह के समान बहुत मनोहर दीप्ति-वाली और धारासार अमृत वर्षा सिर पर सींचती हुई को ललाट में स्थित स्मरण करते हैं, उनके मुख कमलों से, हे सरस्वती! ब्रह्म शक्ति स्वरूपिणि ! गुण युक्त अक्षर और अर्थसहित शब्द गंगा नदी के चंचल लहरों के समान अनायास से ही निकलते हैं ॥ ८ ॥

ये सिंन्दूर पराग पुञ्ज पिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा– ।
मुर्वी चापि विलीनयावक रस प्रस्तारमग्नामिव ॥
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्ते षामनङ्गज्वर ।
क्लान्तास्त्रस्त कुरङ्ग शावकदृशो वश्या भवन्ति स्फुटम् ९

जो पुरुष तुम्हारे तेज के प्रभाव से इस आकाश को सिंदूर की धूलि के समूह से व्याप्त और पृथिवी को भी पिगले लाक्षारस के विस्तार में मग्न, एकाग्र चित से क्षण मात्र में देखते हैं । उन पुरुषों को काम देव के ज्वर से तप्त और भीत मृग के शावक समान कोमल नेत्र वाली अंतर शक्तियां(वृत्तियां)प्रकट रूपसे वश हो जाती हैं ॥९॥

चञ्चत्काञ्चन कुण्डलाङ्गदधरामा बद्धकाञ्चीस्रजं ।
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम् ॥
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं ।
माद्यत्कुञ्जर कर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

जो भक्त जन सावधान चित वाले देदीप्यमान स्वरन के कुंडल बुजा बंध और रशनासूत्र धारण करणे वाली आपको स्मरण करते हैं। उन भक्तों के घरों में प्रति दिन विलास करती हुई मद से मतवाले हाथी के शरूपांकार कानों की भांति चंचल लक्ष्मी चिर काल तक स्थिति करती है ॥ १० ॥

आर्भटया शशिखण्ड मण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं ।
बन्धूक प्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम ॥
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामा पीनतुङ्गस्तनीं ।
मध्ये निम्नवलित्रयांकिततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥ ११ ॥

आनंद रस पूर्ण चंद्र कला से अलंकृत, जटाजूट वाले, कपाल माला को धारण करणे वाले, जपा कुसम के समान लाल वस्त्र धारण करणे वाले, प्रेतासन पर स्थिति करती हुई चार बुजा और तीन नेत्र वाले, मोटे स्तन वाले, मध्य भाग में गहरे तीन रेखावों के चिहन सहित शरीर वाले स्वरूप को जानने के लिये भक्त जन ध्यान करते हैं ॥ ११ ॥

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले ।
निःशेषावनि चक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ॥
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभव- ।
द्देवि! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोयं प्रसादोदयः ॥१२॥

हे देवि! एक श्री वत्सराजा नामी साधारण राजावों में उत्पन्न हुवा ॥ छोटे परिवार और सामान्य कुल में उत्पन होने पर भी वह तुम्हारे प्रणामों से उपजित महान प्रताप से सारी पृथिवी के चक्रवर्ति पदवी को प्रप्ति हुवा ॥ और विध्धाधर नाम के देवता उसके पादों की स्तुति करणे लगे ॥ यह सब तुम्हारे अनुग्रह का प्रभाव है ॥ १२ ॥

चण्डि त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन- ।
त्रुट्यत्कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मु कराः ॥
ते दण्डांकुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्यांकितै- ।
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः।१३।

हे चंड मुंड को मथने वाली चण्डि! तुम्हारे चरण कमलों की पूजा विधान में जिन पुरुषों के हाथ विल पत्रों के चुन्ने के लिये उनके कांटों के अग्र भाग से न छोवें तु वह दण्ड अंकुश, चक्र, चाप, धनुष, श्रीवत्स और मछली के चिहन सहित कमल समान हाथ वाले राजे कैसें उतपन्न होवें ॥ १ ३ ॥

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै ।
स्त्वां देवि! त्रिपुरे! परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ॥
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं ।
तां तां सिद्धिमवाप्नवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥१४॥

हे देविः त्रिपुरे! ब्रह्मण क्षत्रिय वैशय और शुद्र, दूध, घी मधु (शहद) और शराव से तुम परापर स्वरुप को पूजा विधान में तृप्त करते हैं॥ उनही निश्चल बुद्धि साधकों के मन जिस २ सिद्धि की याचना करते हैं॥ वह उस उस सिद्धि को निश्चय करके झट पट निर्विघ्न होकर पाते हैं॥ १४॥

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे ।
त्वत्तः केशव वासव प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ॥
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेप्य मी ।
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे॥१५॥

हे त्रिपुरे! तीन भुवनों में अकार से क्षकार तक जितने वर्ण माला के अक्षर हैं; उनकी तुम माता हो॥ इस लिये वाग्वादिनी कहलाती हो॥ तुम से विष्णु इद्र आदि देव श्रिय करके उतपन्न होते हैं। फिर कल्पान्त में वही ब्रह्म आदि तुम में लय होते हैं वही तुम अमित, अलौकिक, अचिंत्य महिमा के स्वरूप वाली हो और परा शक्ति कहलाती हो॥ १५॥

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा ।
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ॥
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं ।
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीन देव। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय तीन अग्नि ॥ इच्छा, ज्ञान, क्रिया, तीन शक्तियां, ॥ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, यह तीन स्वर ॥ भूः भुवः स्वः यह तीन लोग, ॥ जालन्धर, कामरूप, उड्डीसा, यह तीन पद। नाभि, हृदय, ललाट, यह तीन पुष्कर, ॥ इडा पिंगला सुषुम्ना अथवा तत् सत् ब्रह्म ये तीन ब्रह्म ॥ ब्रह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीन वर्ण, ॥ तथा जगत में जो कुछ त्रिवर्गात्मक वस्तु विभजित हैं। वहसब त्रिपुरा भगवती के नाम का ही यथार्थ में अनुकरन करते हैं ॥ १६ ॥

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमंकरीमध्वनि ।
क्रव्याद द्विप सर्प भाजि शवरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ॥
भूत प्रेत पिशाच जम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं ।
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥१७॥

त्रिपुरा के नाम स्मरण से ही अभिष्ट फल मिलता है। इस लिये लक्ष्मी का स्मरण राज द्वार में ॥ जया का स्मरण रणभूमी में। क्षीमंकरी का मार्ग में ॥ शवरी का स्मरण विषम, दुर्गम पर्वतों और

राक्षस हाथी सर्पक भय के समय। महा भैरवी का स्मरण भूत, प्रेत, पि-शाच और सिहम के भय के समय करणा योग्य है ॥ त्रिपुरा का स्मरण चित भ्रम के समय ॥ तारा का स्मरण पानी के बीच जहाज़ वा नौ में तरने के समय करणा चाहे इस प्रकार संपूर्ण विपदायें दूर हो जाती हैं ॥ १७ ॥

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी ।
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ॥
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी ।
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ १८ ॥

सर्व स्वतन्त्र शक्ति ॥ मूलाधार शक्ति ॥ क्रिया शक्ति ॥ ज्ञान शक्ति ॥ सृष्टि स्थिति संहार शक्ति ॥ अमृत कला शक्ति ॥ वर्ण माला शक्ति ॥ परा शक्ति जय विजय रूपी ॥ सर्वऐश्वर्यमती। प्रकाश रूपी। कल्यान रूपी ॥ आनन्द रूपी ॥ स्वयं शक्ति ॥ महादेव कीप्रिया ॥ सोम सूर्य अग्नि रूपी ॥ वैखरी स्वरूपी ॥ भयंकर स्वरूपिणी ॥ माया बीज शक्ति ॥ इडा पिंगला सुषुम्ना शक्ति ॥ स्थूल सूक्ष्म स्वरूपिणी ॥ जगत जननी ॥ जगत विलासनी ॥ यह श्लोक भगवती के महा मंत्र का गर्भ है ॥ इसे से ह्रीं, श्रीं, क्लीं, स्त्रौं, ऐं, पांच वीजाक्षर निकलते हैं ॥ १८ ॥

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः ।
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः ॥
नमानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते ।
तेभ्यो भैरवपत्नि! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥ १९॥

हे त्रिपुरे! आकार और ईकार के संपुट (जोड) को कवर्ण से लेकर क्षवर्ण तक मिलावें॥ फिर स्वर सहित कवर्ण से लेकर क्षवर्ण तक मिलावें॥ इस तरह जो तम्हारे नामों की संख्या जो वन्ती है। वह हे भैरव पत्नि! वीस हजार से अधिक हैं। उनको निश्चय करके मैं नमस्कार करता हों॥ १९॥

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं ।
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्यमनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ॥
एकद्वि त्रिपद् क्रमेण कथितस्त्वत्पाद संख्याक्षरै- ।
र्मन्त्रोद्धार विधि र्विशेष सहितः सत्सं प्रदाया न्वितः।२०।

विद्वानों को यह त्रिपुरा नाम सरस्वती के स्तोत्र पर एकाग्र-बुद्धि से मन को तन्मय करके विमर्श करना चाहिए॥ जिस स्तोत्र के पहले श्लोक में तुम्हारे पादों की संख्या पहले दूसरे और तीसरे पद वाले अक्षरों के क्रम और मंत्रों के उद्धार की विधि असामान्य गुण सहित और गुरु संप्रदाय सहित कही गई है॥ २०॥

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किंवानया चिन्तया ।
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ॥
संचिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं संजायमानं हठा- ।
त्वद्भक्त्तथा मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ।२१।

दोष रहित, हो वा दोष सहित हो, इस चिंता को छोड कर जिस पुरुष को तुम्हारी भक्ति हो वह इस स्तोत्र को पढे ॥ मैं ने भी निश्चय करके बलात्कार तुम्हारी भक्ति के उत्साह से अपने लाघव पन का विचार छोडकर इस स्तोत्र की रचना कियी ॥ २१ ॥

इति श्रीपञ्चस्तव्यां लघुस्तवः ॥

चर्चास्तवो द्वितीयः ।

ॐनमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

ॐ आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं ।
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ॥
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु ।
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥ १ ॥

जिस जगत्माता के पाद कमल पर देवराज ने उत्तम माला अर्पण किई थी ॥ जिस पाद कमल ने महिषासुर के सिर को बलात्कार दबाया है ॥ जों पाद कमल पायजेबों के मनोहर शब्दों से शोभित है । वही मनोहर पाद कमस जगत्माता के मेरे जयका हेतु होवें ॥ १ ॥

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य ।
सम्पत्तिकल्पतरवस्त्रिपुरे जयन्ति ॥
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध ।
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामा ॥ २ ॥

हे त्रिपुरे ! सौन्दर्य के विलासस्थान रूप; चौदह भुवनों के जो स्वामी हैं, उनके ऐश्वरियों के कलपवृक्ष रूप; और समस्त कविता रूपी पुष्पो के विकास के लिये पूर्ण चन्द्रमारूप जो जो प्रणाम हैं, हे जगत जननी वही तुमको प्राप्त हों ॥ २ ॥

देवि! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते ।
वाचस्पतिप्रभृतयोपि जडीभवन्ति ॥
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोहमत्र ।
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि कर्तुम् ॥ ३ ॥

हे देवि ! तुम्हारी स्तुति करने के व्यापार में बुद्धि कौशल रखने वाले बृहस्पति आदि देव गुरु भी जडबुद्धि बनते हैं ॥ हे महादेव की पत्नि ! तिस कारण मैं स्वभाव से ही मूरख जडबुद्धि कौन हों कि तुम्हारे स्तुति करने को समर्थ बनों ॥ ३ ॥

मातास्तथपि भवतीं भवतीव्रताप ।
विच्छित्तये स्तुति महार्णवकर्णधारः ॥
स्तोतुं भवानि! स भवच्चरणारविन्द ।
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरीकरोति ॥ ४ ॥

हे भवानीमातः ! फिर भी संसाररूपी कठिन तापों के विनाश के लिऐ, स्तुतिरूपी अगाध समुद्र का मल्लाह बना हुआ, आप के चरणारविन्दों की जो अलौकिक भक्ति का आग्रह है, वही मुझे स्तुति करने में वाचालित बनाता है ॥ ४ ॥

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति ।
जागर्ति तत्त्वयकृते भवती भवानि! ॥
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि ।
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्या ॥ ५ ॥

हे भवानि! ब्रह्मनरूप से तुम संसार की उत्पत्ति करती हो ॥ वैष्णवी रूपसे संसार का पालन करती हो ॥ रुद्राणी रूप से संसार का संहार करती हो ॥ तुम मोह(अज्ञान)को दूर करती हो ॥ तुमही संसार में फंसाती हो । जो तुम आश्चर्य जनक लीला को दिखाती हो उस का विजय नित्य होवें ॥ ५ ॥

यस्मिन्मनागपि नवाम्बुजपत्रगौरि! ।
गौरि! प्रसाद मधुरां दृशमादधासि ॥
तास्मिन्निरन्तरम नङ्गशरप्रकीर्णा ।
सीमन्तिनी नयन संततयः पतन्ति ॥ ६ ॥

हे गौरि! नवस्थल कमल के पत्र के समान श्वेतवर्णा! तुम जिस पुरुष विशेष पर थोडी सी अमृतस्यन्दिनी प्रसाद कीद्रष्टि डालती हो, उस पुरुष विशेष पर नित्य काम देव के बाणों से छिदे हुई देव स्त्रियों की आखों की पंक्तियां पडती हैं ॥ अर्थात् उस को योगिनियां वश हो जाती हैं ॥ ६ ॥

पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रवरस्य तस्य ।
विद्याधर प्रणति चुम्बित पादपीठः ॥
यच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयः स एष ।
त्वत्पाद पङ्कजरजः कणजः प्रसाद ॥ ७ ॥

राजा उदयन का पुत्र प्रवरसेन जिनके चरण कमलों को विद्याधर देव विशेष चूमते थे, जो चक्रवर्ती राज़्य का प्रणयी (भर्ता) हुआ, हे जगदम्बा । वह आपके चरण कमलोंके धूलिकणों के प्रसाद से हुआ था अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

त्वत्पादपङ्कजरजः प्रणिपातपूतैः ।
पुण्यैरनल्पमातिभिः कृतिभिः कवीन्द्रै : ॥
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता ।
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्ति ॥ ८ ॥

हे भगवति! तुम्हारे चरन कमलों की धूलि को प्रणाम करने से पवित्र बने हुए कई भाग्यशील पुण्यवान सूक्षम बुद्धि कवियोंने दूध चन्द्रमा और रेशमी वस्त्रके समान निर्मल कीर्ति तीन भुवनों में पाई ॥ ८ ॥

कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजा- ।
मुद्दीपिताप्रियतमा मदरक्तगीतिम् ॥
नित्यं भवानि! भवतीमुपवीणयन्ति ।
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥ ६ ॥

हे भवानि! कल्पवृक्ष पुष्पों से किये हुए पूजा वाले ॥ प्रेम के गीत से गाते हुए ऐसे विद्याधर लोग, सुमेरुपर्वत के गुहा रूप घरों में बैठकर आनन्द से तुमारी गीत वीणा से गारहे हैं ॥ ८ ॥

लक्ष्मीवशीकरनकर्मणि कामिनीना- ।
मा कर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ॥
नीरन्ध्रमोहतिमिर च्छिदुर प्रदीपो ।
देवि त्वदंघ्रिजनितो जयति प्रसादः ॥ १० ॥

हे देवि! तुम्हारे चरण कमलों से उत्पन्न हुवा जो उत्कृष्ट प्रसाद है, वह महा लक्ष्मी को वश करने के कार्य में, और कामना दायक शक्तियों के आकर्षण के कार्य में सिद्ध मंत्र है। तथा दृढ मोह रूपी अंधकार के काटने का दीपक है ॥ १० ॥

देवि! त्वदंघ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः ।
प्रत्यग्रमौक्तिक रुचो मुदमुद्वहन्ति ॥
सेवा नति व्यतिकरे सुरसुन्दरीणां ।
सीमन्तसीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः ॥ ११ ॥

हे देवि तुम्हारे चरणों के नख रत्नों के नित्यनवीन जो किरण हैं ॥ वह मोतियों की सी दीप्ति धारन करते हैं ॥ उन किरणों के हेतु योगिनियों के सीमन्त की मर्यादा रूप पुष्पों के गुच्छे अर्थात उनके शिर तुम्हारी पूजा और प्रणाम के व्यवहार में समर्थ होते हैं ॥ १० ॥

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिन दीधिति दीप्तिदीप्तं ।
मध्येललाटमऽमरायुध रश्मिचित्रम् ॥
हृच्चक्र चुम्बि हुतभुक्कणिकानुरूपं ।
ज्योतिर्यदेतादिदमम्ब तव स्वरूपम ॥ १२ ॥

हे मातः तुम्हारा मस्तक चन्द्रमा की चांदनी सी देदीप्यमान है ॥ माथा तुम्हारा इन्द्रधनुष जैसे नाना वर्णों से रंजित है ॥ हृदय तो अग्नि की चिंगारियां जैसी ज्योतिवाला है ।, यही तेरा स्वरूप है ॥ १२ ॥

रूपं तव स्फुरितचंद्रमरीचिगौर- ।
मालोकते मनसि वागधिदैवतं यः ॥
निस्सीमसूक्तिरचनामृतनिर्झरस्य ।
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्तिः वाचः ॥ १३ ॥

जो पुरुष तुम्हारे रूप को विकसित चन्द्रमा के किरणों के सदृश श्वेत वर्णी सरस्वती रूप मस्तक में ध्यावे, उस (पुरुष) के स्तुति रचना के निर्मल और मीठे वाक्य अमृत नदी के प्रवाह जैसे निकलते हैं ॥ १३ ॥

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां ।
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम् ॥
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे विहाय ।
व्रीडां मृडानि! सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ॥ १४ ॥

हे त्रिपुरे! तुम्हारे तेज से मानो सिंदूर की धूली से आकाश आछादित हुआ, और पृथिवी भी लाक्षा रस से रंजित जैसी हुई है। जो पुरुष लाज छोड कर एक क्षण भी ऐसे तुम्हारे स्वरूप को देखे, हे मृडाणि! उस पुरुष के चक्षुरादि इन्द्रियों की शक्तियां वश होकर पीछे दोडती हैं ॥ अर्थात वह जितेन्दिय बन जाता है ॥ १४ ॥

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं ।
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः ॥
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमऽनङ्गतप्ताः ।
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥ १५ ॥

हे माताजी! जो पुरुष तुम्हारे स्वरूप का लाक्षा रस के बारीक तन्तु के समान महोर्त मात्र भी स्मरण करे ॥ उस सुन्दर गुण वाले पुरुष को काम देव से तपाई हुई देवस्त्रियां एकाग्र चित होकर भावना करती हैं ॥ तात्पर्य यह है कि उसकी चित वृत्तियां वशी भूत हो जाती हैं ॥ १५ ॥

योयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दु– ।
योयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः ॥
यद्वामम्ऽर्धमिदम्ऽन्धकसूनस्य ।
देवि त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥ १६ ॥

जो आकाश रूपी समुद्र के रत्नभूत चन्द्रमा को प्रकाशित करती है ॥ जो देवता और असुरों का गुरु पुराण पुरुष आदि शक्ति है। जो महादेव जी की वामार्ध भाग है, हे देवि! वह तुम ही हो ॥ यः शास्त्रों में साधकजन सिद्ध करते हैं ॥ १६ ॥

इच्छानुरूपमनुरूपगुणप्रकर्षं ।
सङ्कर्षिणि त्वमनुसृत्य यदा बिभर्षि ॥
जायेत स त्रिभुवनैकगुरुस्तदानीं ।
देवः शिवोपि भुवनत्रयसूत्रधारः ॥ १७ ॥

हे संकर्षिणि! अपनी इच्छा के अनुकूल (स्वत्व रज तम) गुणों की आधिक्य को अनुसरण करके जब धारण करती हो उसी समय हे देवि: वह तीन भुवनों के केवल एक गुरु भगवान शिवजी उत्पन्न होकर संसार नाटक के आरम्भ का सूत्र धार (प्रधान नट) बनता है ॥ १७ ॥

रुद्राणि विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां ।
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमनन्यरूपाम् ॥
तानेत्य पद्मलदृशः प्रसभं भजन्ते ।
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥ १८ ॥

हे रुद्राणि! जो साधक तुम्हारी प्रवाल रत्न की प्रतिमा जैसी रक्त वर्ण, उपमा रहित मूर्ति का चिन्तन करते हैं ॥ उन साधकों को नितनवीन देवस्त्रियां गले में कोमल भुजालतायें डाल कर समीप होकर भजन करती हैं ॥ १८ ॥

त्वद्रूपमुल्लसित दाडिम पुष्परक्त- ।
मुद्भावयेन्मदन दैवतमक्षरं यः ॥
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेष- ।
मालोकयन्त्यु रुनितम्बभरा स्तरुण्यः ॥ १६ ॥

जो भक्त जन विकसित अनार के पुष्प के समान लाल तुम्हारे अविनाशी स्वरूप कामराज बीज की भावना करें; उन भक्त जनों को रूप हीन होने परभी, सुन्दररूप युवतियां योगिनियां निःशंक प्रेम करती हैं ॥ १६ ॥

ध्यातासि हैमवति येन हिमांशुरश्मि- ।
मालाऽमलद्युतिऽरकल्मषमानसेन ॥
तस्याऽविलम्बमनवद्यमनन्तकल्प- ।
मल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि वाग्विलासम् ॥२०॥

हे हिमालय की बेटी! जिस शुद्धमन वाले साधक ने चन्द्रदेव के किरणों के समान निर्मल चमक वाले तेरे स्वरूप का ध्यान किया है, हे सुन्दरि! उस के झटपट ही निर्दोष चिरकाल तक रहने वाले वाणी विलास को उत्पन्न करती है ॥ २० ॥

आधार मारुत निरोधवशेन येषां ।
सिन्दूररञ्जित सरोज गुणानुकारि ॥
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि! वपुस्त्वदीयं ।
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धसाध्या ॥ २१ ॥

हे देवि! जिन पुरुषों को मूलाधार पवन के निरोध के बलसे तुम्हारा स्वरूप सिन्दूर से रंगे हुये कमल के समान हृदय में प्रकट भासता है उन पुरुषों का ध्यान सिद्ध और साध्य देवता पूर्ण अभिलाश से करते हैं ॥ २१ ॥

त्वामैन्दवीमिव कलामऽनुभालदेश– ।
मुद्भासिताम्बरतलामऽवलोकयन्तः
सद्यो भवानि! सुधियः कवयो भवन्ति
त्वां भावनाहितधियां कुलकामधेनुः ॥ २२ ॥

हे भवानि! जिन तत्वदर्शियों को तुम्हारे माथे पर शून्य स्थान में चन्द्रमा की जैसी कला देखते हुए समीप भास्ती है, वह कवि बन जाते हैं॥ और जिन की बुद्धियां तुम्हारी भावना में लगी हैं, उनके लिए तू अभीष्टफल को देने वाली हो ॥ २२ ॥

त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति ।
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति ॥
त्वां मालिनीति ललितेत्यऽपराजितेति ।
देवि! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ॥ २३ ॥

हे देवि! भक्त जन तुमको व्यापिनी (सर्व व्यापक) सुमना (शखा मूल स्थान) कामिनी (अभिष्ट दातृ) कलावती (सोमसूर्याग्निस्वरूपा) मालिनी (वर्णा माला रूपी) ललिता (सौन्दर्यस्थान रूपी) अपराजिता (शुत्रुओं से अजित) विजया तथा जया (जयदेती वाली) उमा (शिव पत्नी) ऐसे नामों से पुकारते हैं ॥ २३ ॥

ये चिन्तयन्त्यरुण मण्डलमध्यवर्ति ।
रूपं तवाम्ब! नवयावकपंकपिंगम् ॥
तेषां सदैव कुसुमायुध बाणभिन्न– ।
वक्षःस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥ २४ ॥

हे अम्ब! जो साधक बाल सूर्य के मण्डल में रहने वाले नव लाक्षा की कीचड केसमूह के समान तुम्हारे (भूरे) रूप को चिंतन करते हैं ॥ उन पुरुषों को नित्य कामदेव के बाणों से काटे हुए वक्षः स्थल वाली योगिनियां वश वरती हो जाती हैं ॥ २४ ॥

उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे! पुनीहि ।
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि ॥
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य ।
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्ति ॥२५॥

हे तपाये हुए सोने के समान दीप्तिमती त्रिपुरे! तुम्हारे चरणों के स्मरण करणे वाले मुझको पवित्र कीजियो ॥ मेरे चित में चिर काल के अर्जित पाप समूह के वन को नाश कीजियो ॥ संसार रूपी कारागृह में काम क्रोध रूपी द्रढ बंधन की संकल को जिसमें मैं पीडित हों तत्क्षनात काट दी जियो ॥ २५ ॥

शर्वाणि! सर्वजनवन्दितपादपद्मे ।
पद्मच्छद च्छवि विडम्बित नेत्रलक्ष्मि ॥
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि! ।
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य ॥ २६ ॥

हे शर्वाणि! शिव के हृदय वल्लभे! हे सब जीव विशेष से वन्दित चरण कमल वाली! हे अपने नेत्रों की शोभा से तिरस्कृत कमल पत्रवाली! हे शुद्ध शरीर वाले पुरुषों के मानस (चित्त) रूपी जो सरोवर है उस में विहार करने वाली राजहन्सि! तुम साधक मनुष्य के नाना प्रकारकी आपदा को दूर करती हो ॥२६॥

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद्गुणा- ।
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि ॥
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे ।
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि! मा शाम्यतु२७

हे देवि! तुम्हारे रूप के दर्शन का जो प्रणय है। वह मेरे नेत्रों को प्राप्त हो, तुम्हारे गुण समूह के सुनने में जो राग है, वह मेरे कानों को प्राप्त हो। तुम्हारी नाम स्मरणा मेरे चित्त को प्राप्त हो तुम्हारे चरण कमलों के अर्चना की जो चतुरता है, वह मेरे हाथों को प्राप्त हो, तुम्हारी कीर्तना मेरी वाणी को प्राप्त हो। कही भी तुम्हारी उपासना की जो प्रीति है, वह मुझ में बढती रहे ॥ २७ ॥

उद्दामकोम परमार्थ सरोजषण्ड- ।
चण्डद्युतिद्युतिमुपासितषट प्रकाराम् ॥
मोह द्विपेन्द्र कदनोद्यतबोधसिंह- ।
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥ २८ ॥

सब से उत्कृष्ट जो अभिलषणीय वस्तु कामराज बीजाक्षर रूप परमार्थ, वही कमलों का पुंज है, उसके समान अतिदीप्तिमती, मूलाधारादिषट चक्रों में उपासित; अज्ञान रूपी हाथी के मारने में बोध रूप सिंहकी, लीला रूपी गुफा में स्थित, त्रिपुरा भगवतीको प्रणाम करता हों ॥२८॥

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता।
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता॥
अनंगकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः।
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः॥ २९॥

गणेश, विष्णु ब्रह्मा से स्तुति किई हुई; रति प्रीति के सहाय काम देव से युक्त; शिव ही आधार वाली; काम देव के बानों युक्त; दिव्यौघ सिद्धौघ मानवौघ तीन कारणों से परिवृत; कदम्ब वृक्ष के वन में स्थित त्रिपुर सुन्दरी हमारी रक्षा करे॥ २९॥

ब्रह्मेन्द्र रुद्र हरिचन्द्र सहस्ररश्मि-।
स्कन्द द्विपानन हुताशन वन्दितायै।
वागीश्वरि! त्रिभुवनेश्वरि. विश्वमात-
रन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते॥ ३०॥

हे सरस्वति! हे त्रिभुवनेश्वरि! हे जगतमात! ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, कुमार, गणेश, अग्नि से वन्दना किई जाती हो। तुम ही अन्तर बाहिर रमने वाली को नमस्कार होवे॥ ३०॥

यः स्तोत्रमेतद्ऽनुवासरमीश्वरायाः ।
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति ॥
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ ।
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् ॥ ३१ ॥

जो साधक कल्याण कारिणी भगवती की इस स्तुति को प्रति दिन पढता है, या सुनता है । उस की मनोकामना भगवती पूर्ण करती है। वह चक्र वर्तियों से पूजा किया जाता है । और योगिनियों का भी स्नेहपात्र वह होता है ॥ ३१ ॥

घटस्तवस्तृतीयः

देवि त्र्म्बकपत्नि पार्वति सति त्रैलोक्यमातः शिवे ।
शर्वाणि त्रिपुरे मृडानि वरदे रुद्राणि कात्यायनि ॥
भीमे भैरवि चण्डि शर्वरि कले कालच्चये शूलिनि ।
त्वत्पादप्रणातान नन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ॥ १ ॥

हे देवि! चमकती हुई मूर्ति वाली । हे त्रिनेत्र धारी शिव के प्राणवल्लभे! हे हिमालय की पुत्रि! हे दक्ष की पुत्रि! हे तीन लोगों की मातः! हे कल्याण कारिणि! हे शिवप्रिये! त्रिपुरे! बीजत्रय रूप वाली! हे सुख देने वाली! वरदेने वाली! रुद्र की शक्ति रूपे! हे कात्यायन मुनि की बेटी! हे शत्रुपक्ष को भय देने वाली! हे भयानक शब्द वाली! हे भयानक तेज वाली! हे रात्रि स्वरूपे! हे वीर्य वति! हे कालभय दूर करने वाली! हे त्रिशूल को धारण करने वाली! तुम्हारे चरणों पर पडे हुए एकाग्र मन वाले तथा अत्यन्त व्याकुल बने हुए हमको पालन करो ॥ १ ॥

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव ।
प्राप्तप्रौढमदा इवातिविरहग्रस्ता इवार्ता इव ॥
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रत– ।
स्त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥ २ ॥

उन्मत्तचित जैसे, सूर्य आदिग्रह वा किसी हठ में फंसे हुवे जैसे विष की प्राप्ति से मूर्छित जैसे बडे घुमराडी जैसे, बहुत विरह में पीडित जैसे, दीनता से पूर्ण जैसे जो (भग्यशील साधक) पर्वत पुत्री के ध्यान में एकाग्र चित हैं, उनको इन्द्रिय वृत्तियां, उपाधियां छोड कर राग पूर्ण मन से चिन्तन करती हैं ॥ २ ॥

देवि! त्वां सकृदेव यः प्रणमति चोणीभृतस्तं नम– ।
न्त्या जन्म स्फुरदंघ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः ॥
यस्त्वामऽर्चीति सोऽर्च्यते सुरगणै र्यः स्तौति स स्तूयते ।
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रव ३

हे देवि! जो पुरुष तुमको एक वार प्रणाम करता है, उस के चरणों पर राजा लोग अपने ताजरत्नों को रखकर जन्मांतर तक अधीन रहते हैं। जो पुरुष तुम्हारी पूजा करते हैं वह देव गणों से पूजा किये जाते हैं जो तुम्हारी स्तुति करता है, वह देवताओं से स्तुति किया जाता है। जो पुरुष तुम्हारा ध्यान करता है, उस को कुटिल नेत्र वाली योगिनियां ध्यान करती हैं ॥ ३ ॥

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे! हृदि त्वां ।
लावण्य यौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः ॥
ते विस्फुरन्ति ललितायत लोचनानां ।
चित्तैक भित्ति लिखित प्रतिमाः पुमांसः ॥ ४ ॥

हे मातः त्रिपुरे ! सौन्दर्य तारुण्य और धन से भी हीन जो साधक पुरुष एक क्षण में तुम्हारे स्वरूप को हृदय में चिन्तन करते हैं । वह पुरुष सुन्दर और लंबे नेत्रों वाली अष्ट सिद्धियों का चित्त रूपी दीवार पर चित्रित पुरुष जैसे विकास में आते हैं ॥ ४ ॥

एतं किं नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः ।
कि वाऽमुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये ॥
तस्येत्थं विवशो विकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः ।
किं तद्यन्न करोति देवि! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ॥ ५ ॥

इस साधक को मैं नेत्रों से क्यों न पानकरूं, या अपने अंगों से इस के शरीर में प्रवेश क्यों न करूं, या पेट में क्यों न समाऊं! तथा क्यों न मैं इस के साथ एकता (अभेद) पाऊं। ऊपर लिखे विचार घटना के अभिप्राय से उस की इन्द्रिय शक्तियां आधीन होती हैं। हे देवि! तुम जिस के अन्तः करण में रमन करती हो, संसार में उसको कौनसा वस्तु दुर्लभ है, अर्थात कोई नहीं ॥ ५ ॥

विश्वव्यापिनि ! यद्वदीश्वर इति स्थाणाव नन्याश्रयः ।
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि! त्वय्येव तथ्यस्थितिः ॥
इत्थं सत्यपि शव नुवन्ति यदिमाः चुद्रा रुजो बाधितुं ।
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि चित्रं महत् ॥६॥

ह जगत में व्याप्त रहने वाली! जिस प्रकार इश्वर शब्द इश्वर में चरितार्थ(स्वाभाविक)होता है, अन्य किसी पर नही, हे त्रिजगत्मातः! उसी प्रकार शक्ति शब्द तुम्हारे में ही शोभा देता है, अन्य पर नही। यद्यपि ईश्वर भक्तों को भवबाधा दुः खितकर सकती है, हे देवि ! क्रोध से भी तुम अपने भक्तों को क्षुब्ध नहीं बनाती हो, यह तो अचरज की बात है ॥ ६ ॥

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं ।
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम् ॥
वर्षन्तीममृतं भवानि ! भवतीं ध्यायति ये देहिन– ।
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरत ॥७॥

हे भवानि! चन्द्रमा के मध्य, चन्द्रका रूप से स्थित, चन्द्रमा के समान, प्रकाश वाली तथा अत्यन्त मनोहर, विकसित स्थल कमल पर स्थित तैलपूर्ण दीप की भांति उज्वल, अमृत को वरसाती हुई, ऐसे तुम्हारे रूपका जो साधक ध्यान करते हैं। वे नीरोग होते हैं। और विपदायें उनको छोड देती हैं, अर्थात किसी प्रकार का रोग तथा विपदा उनको आक्रमण नही कर सकती ॥ ७ ॥

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव ।
क्षीराब्धेः लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव ॥
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया ।
चित्तान्त र्निहतार्तिताप विपदस्ते सम्पदं बिभ्रति ॥ ८ ॥

पूर्ण चन्द्रमाके टुकडे जैसी अमृत के प्रवाह सी, क्षीर समुद्र के लहरों सी, अमृत के कीचड के पिण्ड सी, वर्फ जैसे वने हुए तुम्हारे स्वरूप का ध्यान जो मनुष्य करते हैं, वह हृदय स्थित आंतता संताप और विपदा को त्याग करके लक्ष्मी के पात्र बनजाते हैं ॥ ८ ॥

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं ।
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम् ॥
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं ।
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ॥ ९ ॥

जो साधक बिजली के समान चंचल, निरावरण चमकने वाली षटदल, दशदल, द्वादशदल, षोडश दल, द्विदल अथवा स्वादिष्ठानादि पंच ग्रन्थियों के नाम वाली, बाल सूर्य जैसी रक्त वर्ण वाली, अति अनुराग वाली, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप द्वैत प्रपंच के समद्र में सब जगत को डुवाने वाली, तुम को स्मरण करते हैं उन को योगिणियां चित में धारण करती हैं ॥ ९ ॥

लाक्षारस स्नपितपंकज तंतुतन्वी–
मन्तः स्मरत्यनुदिनं भवती भवानि! ।।
यस्तं स्मर प्रातिमम प्रतिमस्वरूपा ।
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमर्चयन्ति ॥ १० ॥

हे भवानि! लाक्षारस से रंगे हुए कमल फूल की तार जैसे (रक्त वर्ण) तुम्हारे कोमल स्वरूप का जो साधक प्रति दिन अन्तः करण में चन्तन करता है, उसको काम देव के समान अलौकिक स्वरूप वाली योगिणियां नेत्र कमलों से अर्चन करती हैं ॥ १० ॥

स्तुमस्त्वां वाचमव्यक्तां हिमकुन्देन्दुरोचिषम् ।
कदम्बमालां बिभ्राणामापादतलम्बिनीम् ।। ११ ।।

हिम (बर्फ) कुन्द (श्वेतपुष्प) इन्दु (चन्द्रमा) की भांति चमकती हुई गले में चरणों तक लटकती हुई कदम्ब फूलों की माला को धारण करती हुई सूक्ष्म वाग्दवी की हम स्तुति करते हैं ।। ११ ।।

मूर्ध्नीन्दोः सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रंध्रेऽपि च ॥
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नापिच ।
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते वाक्सर्वतो वल्गति ॥१२॥

हे काम देव के शत्रु शिव की प्रिये! हे अमृत कला रूप नाद-स्थान में श्वेत कमल पर स्थिति करने वाली! वर्फ के समान श्वेत दीप्ति वाली! हे मुख और ब्रह्मरन्ध्र के कमलस्थान को अमृत की वर्षा करने वाली! निरमल मनोहर, सुन्दर और प्रसाद गुणों वाली सरस्वती तुम ही को जो स्मरण करते हैं उन की वाणी दुर्गम वस्तु को भी सुगम कर देती है ॥ १२ ॥

ददातीष्टान्भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदो ।
दहत्याधीन्व्याधीञ् शमयनि सुखाति प्रतनुने ॥
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं ।
सकृद् ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥ १३ ॥

एक वार देवी के स्मरण करने वाले साधक को कोनसा दुर्लब वस्तु सुलब नहीं होता है, देवी उसको वाञ्छित भोग देती है । शत्रों को दूर करती है । विपदाओं को नाश करती है । मन की पीडाओं को जला दती है ॥ शरीर क़े सन्तापों को शान्त करती है । सुख को बडाती है । हृदयान्तर्गत दुःखों को नाश करती है । प्रियतमों के विरह को दूर करती है ॥ १३ ॥

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय- ।
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे तव गुणानाकर्णयत्यादरात्
तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति १४

जो साधक तेरी स्मरणा करता है, बुद्धि से जानता है, विद्या से खोजता है, शुद्ध मन से जपता है, ज्ञान नेत्रों से देखता है, श्रवन मनन से विचारता है, कर्मइन्द्रयों से पीछे दौडता है, ज्ञान इन्द्रियों से प्राप्त करता है, स्वरूप लाभ की चिन्तन करता है स्तोत्रों से स्तुति करता है, विधि से अर्चना करता है हे महादेव की प्यारी! जो साधक तुम्हारे त्रिगुणात्मक कर्मों को आदर से सुनता है, उस साधक के घरसे लक्ष्मी कभी नहीं भागती, और विजय आगे २ दौडता है ॥ १४ ॥

किं किं दुःखं दनुजदलिनि क्षीयते न स्मृतायां ।
का का कीर्तिः कुलकमलिनि! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ॥
का का सिद्धिः सुरवरनुते प्राप्यते नार्चितायां ।
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥१५॥

हे असुर कुल को नाश करने वाली! तुम्हारी स्मरणा करने वालों को कौन कौन दुःख क्षीण नहीं होता ॥ हे कुल वडाने वाली देवी! तुम्हारे स्तुति करने वालों को कौन कौन सी कीर्ति सिद्ध नही होती ॥ हे ब्रह्मादि देवताओं की पूज्य भगवती! तुम्हारी पूजा करने

वालों को कौन कौन सी सिद्धि प्राप्त नही होती ॥ तुमहारी चिंतन में चित लगाने वालों को कौन कौन सा योगप्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥

ये देवि ! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्था ।
ये कालि ! कालघनपाशनितान्तबद्धाः ॥
ये चण्डि ! चण्डगुरु कल्मष सिन्धुमग्ना–
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥ १६ ॥

हे देवि! जो साधक तेरी स्मरण करता है, उस को तुम कठिन महा काल के मुख में पडने से वचाती हो । हे कालि ! यम पाशों के दृढ वन्धनों से छुड़ाती हो । हे चण्डि ! पापरूपी समुद्र में डूबते को वचाकर पार करती हो ॥ १६ ॥

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि ।
त्वत्पादपंकजरजांसि चिरं जयन्ति ॥
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे ।
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥ १७ ॥

हे मातः तुम्हारे चरण कमलों की धूलि के चूर्ण(कणियां)जो महा लक्ष्मी के वश(अधीन)करने के सहायक हैं, उनका धीर्घ काल पर्यन्त विजय हो । यह धूली के कण प्रणाम करने के समय जिस (पुरुष) के माथे पर लगें उस से विधाता के लिखे हुए अनिष्टसूचक अक्षर मिट जाते हैं ॥ १७ ॥

रे मूढाः! किमयं वृथैव तपसा देहः परिक्लिश्यते ।
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियंते गृहाः ॥
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यता–
मुन्निद्राम्बुरुहातपत्र सुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥१८॥

हे मूढो! तपस्या, चान्द्रायनदि से इस शरीर को क्यों निष्फल कष्ट में डालते हो। अथवा बहुत दक्षना वाले यज्ञों से कई लोग अपने घर को खाली करते हैं। यदि अनादि अनन्त(नाश रहित) भगवती के पाद युगल (जोडी) के सेवा भक्ति से करो तु सेवा करने वाले को महा लक्ष्मी, जिस के सिर पर (विकसित) खिले हुए कमल का छत्र शोभित है, आगे २ दौडती है ॥ १८ ॥

याचे न कंचन न कंचन वंचयामि ।
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः ॥
श्लक्ष्णं वसे मधुरमाद्मि भजे वरस्त्रीं ।
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥ १९ ॥

किसी से प्रार्थना नहीं करों। किसी को नहीं ठगों। स्मस्त दीन भाव को दूर करके किसी की सेवा नहीं करों। कोमल वस्त्र पहन लों। वा; मनोहर वास करों। मीठा खाओं। कुलीन स्त्री चित्शक्ति को भोगों। जब कामनाओं को देने वाली देवी मेरे हृदय में उदय करती है ॥ १९ ॥

शब्दब्रह्ममयि! स्वच्छे! देवि! त्रिपुरसुन्दरि! ।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि! ॥ २० ॥

हे अनाहत शब्द स्वरूपे! त्रिमलों से हीन स्वरूप वाली! देवि! हे त्रिपुर सुन्दरि! मैं ने यथा शक्ति तुम्हारी जपपूजादि की हैं। इस लिए हे परमश्वरि! तुम इस को स्वीकार करो ॥ २० ॥

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्बवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥२१॥

सब साधक पुरुष सुखी रहें। सब दूषणा करने वाले नाश को जावें। शिवस्वरूपिणी अवस्था मुझे प्राप्त हो। गुरुदेव सदा प्रसन्न रहे यह दास की प्रार्थना है ॥ २१ ॥

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी ।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥ २२ ।

त्रिपुर सुन्दरी भगवती के दर्शन से पापों का नाश होता है। जप केरने से अकाल मृत्यु का नाश होता है। पूजन करने से कष्ट और दुर्भाग्यों का नाश होता है ॥ २२ ॥

नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम्
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् २३

चन्द्र कला से केश बन्ध को जिसने अलकृत किया और संसार के संताप को दूर करने के लिए जो नदी रूप है ऐसी भवानी को मैं नमस्कार करता हों ॥ २३ ॥

मंत्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्गतम् ।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि कृपया परमेश्वरि ॥ २४ ॥

हे देवि मनन के विना, कर्म के विना, वेदोक्त विधि के विना, जो कुछ में ने अनुचित किया, हे परमेश्वरि इस पर दया करके वह सब क्षमा करना चाहिए ॥ २४ ॥

इति श्री पञ्चस्तव्यां घटस्तवस्तृतीयः समाप्तः ।

—— §△§ ——

अम्बास्तवश्चतुर्थः ।

ऊँ यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं ।
विद्योति यां श्रति रहस्य विदो वदन्ति ॥
ताम्ऽर्धपल्लावित शङ्कर रूप मुद्रां ।
देवीमनन्य शरणः शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

जिस (माया शक्ति) को मुनि लोग मूल प्रकृति कहते हैं, वेदरहस्य को जानने वाले जिस को विद्या कहते हैं । उसही देवी शिव की प्रत्यय कारिणी (विश्वासजमाने वाली) अर्धांगी को मैं एकाग्र चित होकर शरण होता हों ॥ १ ॥

अ‍म्बस्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि ।
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्फनानि ॥
डिम्भस्य मे स्तुतिरऽसावऽसमञ्जसापि ।
वात्सल्य निघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥ २ ॥

हे मातः! तुम्हारी स्तुति करने में, ब्रह्मादि देवता, रचना में चतुर हो कर भी, असमर्थ हैं। मुझ मूर्ख बालक की स्तुति यदि अनुचित है तोभी अतिशय प्रेम के अधीन तुम्हारे हृदय को तृप्त करती है ॥ २ ॥

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा–
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति ॥
निःष्यन्दमान सुखबोध सुधा स्वरूपा ।
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥ ३ ॥

चिदाकाश रूप से। चिद्विमर्ष रूप से। चित्प्रकाश रूप से अमाकला रूप से। परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी वाग्भूमि रूप से। अकारादि क्षकारपर्यन्त शब्द राशि रूप से निकसती हुई शुद्ध बोध की अमृत प्रवाह रूप तुम भाग्य शील पुरुषों के मन में चमकती हो ॥ ३ ॥

आविर्भवत्पुलक सन्ततिभिः शरीरै–
र्निष्यन्दमान सलिलै र्नयनैश्च नित्यम् ॥
वाग्भिश्च गद्गदपदाभि रुपासते ये ।
पादौ तवाम्ब भुवनेषु त एव धन्याः ॥ ४ ॥

हे मातः! रोमाञ्च पक्ति पूर्ण शरीरों से, धारासार आंसों निकसते हुए नेत्रों से। गद्गद पदों वाली वाणी से। जो साधक तेरे चरणों की उपासना करते हैं। वही तीनों भुवनों में धन्यवाद के योग्य है ॥ ४ ॥

वक्त्रं यदुद्यतमऽभिष्ठतये भवत्या ।
स्तुभ्यं नमो यद्ऽपि देवि शिरःकरोति ।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमऽम्ब तानि ।
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ॥ ५ ॥

हे अम्ब ! तुम्हारी स्तुति करने में जिन साधकों का मुख उद्यत है, हे देवि! जिन का सिर तेरे प्रणाम के लिए उद्यत है, और जिनका मन तुझ पर निरन्तर आसक्त है, उन में विरले किसी साधक को कहीं तप की विशेषता से हो जाता है ॥ ५ ॥

मूलालवाल कुहरादुदिता भवानि ।
निर्भिद्य षटसरसिजानि तडिल्लतेव ॥
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रवमंडलेन्दु–
निःष्यन्दमान परमामृत तोय रूपा ॥ ६ ॥

हे शिवप्रियतमे ! मूलाधार रन्ध्र से उठकर बिजली की भांति चमकती हुई, मूलाधार- स्वाधिष्टान- मणिपूरक- अनाहत- विशुद्ध- आज्ञाचक्र नाम के षटकमलों को भेधनकरके ब्रह्मरन्ध्रस्थान में से अमृत कला रूप बहती हुई आनन्द जल रूप फिर वहीं ही प्रवेश करती हो । अर्थात मूलाधार से आज्ञा चक्र तक आरूह करके फिर अज्ञा चंक्र से मूलाधार तक अवरूह कर करती हो ॥ ६ ॥

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते ।
मुग्धः कटाक्ष विधिरङ्कुरयां चकार ॥
धत्ते तदाप्रभृति देवि ललाटनेत्रं ।
सत्यं ह्रियेव मुकुलीकृतमिन्दु मौलिः ॥ ७ ॥

हे देवि! जब महादेव जी ने एक कामदेव को जला दिया, तो तुम ने अनायास ही कटाक्ष क्रम से उस कामदेव को अनेक रूप उत्पन्न किया ॥ तब ही से महादेव जी ने ललाट नेत्र को लज्जा से सच मुच संकुचित किया है ॥ ७ ॥

अज्ञात संभवमऽनाकलितान्ववायं ।
भिक्षुं कपालिनमऽवाससमऽद्वितीयम् ॥
पूर्वं करग्रहण मङ्गलतो भवत्याः ।
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराज कन्ये! ॥ ८ ॥

हे पार्वति! स्वयम्भू होने से अविदित जन्म वाले । कुल परंपरा रहित भिक्षुक, कपाल धारी, दिगम्बर, असाहाय ऐसे महादेव जी को तुम्हारे पाणिग्रहण से पहले कौन जानता था अर्थात जबसे तुमने उस के साथ विवाह किया तबसे जगत की उत्पती हुई ॥ ८ ॥

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च ।
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ॥
वेताल संहति परिग्रहता च शम्भोः ।
शोभां बिभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ॥ ६ ॥

हे गिरिजे! गजचर्म धारण करने वाले, मृतशरी के भस्म का लेप करने वाले, भिक्षा के लिए फिरने वाले, श्मशान भूमि में नाच करने वाले, वेताल (भूत प्रेत पिशाचों के समूह) के परिवार वाले शम्भु, तुम्हारे साहचर्य से शोभा को धारण करता है ॥ ६ ॥

कल्पोप संहरण केलिषु पण्डितानि ।
चण्डानि खण्डपरशोरऽपि ताण्डवानि ॥
आलोकनेन तव कोमलितानि मात–
र्लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ॥ १० ॥

श्रीमान महादेव के कठिन नाच जो कल्पों के संहार की क्रीडा में निपुण हैं, तुम्हारी नाच रूपी कोमल दृष्टिमात्र से जगत की विभूति के लिए परिणत हैं। अर्थात जगत रूपी ऐश्वर्य को बढाती हैं ॥ १० ॥

जन्तोरपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये ।
निश्शेषपाश पटलच्छिदुरा निमेषात् ॥
कल्याणि! दैशिक कटाक्ष समाश्रयेण ।
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेददीक्षा ॥ ११ ॥

हे कल्याणि! पुनर्जन्म के रहित जीव को शुभाशुभ कर्मों के साम्य होने पर भी सब पापों को क्षण में दूर करने वाली, गुरु वरों के कृपा कटाक्ष से तुम तांत्रिक विधि को या शिवशक्ति समावेश को दयासे जितलाने वाली होती हो ॥ ११ ॥

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा ।
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या ॥
एकः स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां ।
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥ १२ ॥

मोतियों के भूषणों से अलंकृत, नवलोध्र से शोभाय मान, और (नक्षत्र) तारकों वाली संध्या जैसा तुम्हारा स्वरूप, जिस के चित में विलसित होता है। वही एक पुरुष तीन भवनों की (सुदरियों) इन्द्रिय शक्तियों के पंच बाणों के रहित भी काम बीज भाव को जाता है ॥ १२ ॥

ये भावयन्त्यमृत वाहि भिरंऽशुजालै-
राऽप्यायमान भुवनामऽमृतेश्वरीं त्वाम् ॥
ते लङ्घयन्ति ननु मातरऽलङ्घनीयां ।
ब्रह्मादिभिः सुरवैररपि कालकद्याम् ।। १३ ।।

हे मातः! जो पुरुष अमृत पूर्ण किरणों से तीन भुवनों को तृप्त करने वाली अमृतेश्वरी को भावना करते हैं। वह पुरुष काल मर्यादा से निश्चय करके पार चले जाते हैं। जिस काल मर्यादा का पार जाना ब्रह्मादि श्रेष्ट देवताओं को भी कठिन है ॥ १३ ॥

यः स्फाटिकाच्च गुण पुस्तक कुण्डिकाढयां ।
व्याख्या समुद्यतकरां शरदिन्दु शुभ्राम् ॥
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते ।
मातः स विश्वक विताकिंक चक्रवर्ती ॥ १४ ॥

हे मातः! जो पुरुष स्फाटिक मालाधारी, कुण्डल भूषण युक्त, हाथ फैलाकर व्याख्यान करती हुई, शरत्काल (असूकार्तिक) के चन्द्रमा के समान श्वेत कमल पर विराज मान तुम्हारे रूप की हृदय में उपासना करता है, वह जगत के तर्क वितर्क युक्त विद्वानों का राजा बनता है ॥ १४ ॥

बर्हावतंस युतबर्वर केशपाशां
गुञ्जावलीकृत घनस्तनहार शोभाम्
श्यामां प्रवालवदन सुकुमारहस्तां ।
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम ।। १५ ।।

मोर पुछ युक्त मनोहर केश बन्ध वाली, गुञ्जा रत्तियां फलों के हारों से अनोंकी शोभा वाली श्याम रूप कुछ लाल मुख वाली कोमल हस्तों वाली, जो शिकारिनी शिकारी रूप शिव की पत्नी है, उसको मैं नमस्कार करता हों ॥ १५ ॥

अर्धेन किं नवलतालळितेन मुग्धे ।
क्रीतं विभोः परुषमर्ऽधमिदं त्वयेति ॥
आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये ।
मन्दस्मितेन तव देवि जडीभवन्ति ॥ १६ ॥

हे महा सुन्दरी! तुम ने नई बेल जैसी मनोहर स्वरूप वाली ने अपने अर्धांग के बदले स्वामी शिव के इस कठोर दक्षिण अर्धांग को मूल्य क्यों लिया; हे देवि ! हम जानते हैं। कि सखी जनों के हास्य पूर्वक वचन तुम्हारे मन्द मुस्कान से मूढ बन जाते हैं ॥१६॥

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बक संकुलोयं ।
मायोदधि र्विविधदुःख तरङ्गमालः ॥
आश्चर्यमऽम्ब झटिति प्रलयं प्रयाति ।
त्वद्ध्यान संतति महावडवामुखाग्नौ ॥ १७ ॥

हे अम्ब! यः माया रूप समुद्र, ब्रह्माण्ड रूप जल के बुल बुलों के समूह से व्याप्त है विविध प्रकार के दुःख रूपी तरंग मालाओं से पूर्ण है। हे अम्ब! आश्चर्य है कि तुम्हारे ध्यान समूह रूप वडवाग्नि में यह माया रूप समुद्र तरंग और बुद्बुदों सहित शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ १७ ॥

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति ।
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति ॥
एका सती भगवती परमार्थतोऽपि ।
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥ १८ ॥

दक्ष प्रजापत की पुत्री सती; मूलाधार वासिनी कुण्डलिनी; हृद्गुफा वासिनी अंतर्यामिनी(चित शक्तिः) कलिका रूपा; लक्ष्मी रूपा कलावती (षोडश कलारूपा) इस प्रकार परमार्थ से एक ही सती भगवती (तुम सर्वरूप)नर्तकी जैसी विविध रूपों को धारण करने वाली दिखाई देती हो ॥ १८ ॥

आनन्दलक्षणमऽनाहतनाम्नि देशे।
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे ॥
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं।
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥ १९ ॥

हे ईशे! वह पुरुष धन्य हैं जो अनाहतस्थान(हृदय)में तुम्हारे सुख स्वरूप को, नाद रूप में परिणत करके सर्व गत मन से अभ्यास करते हुए रोमाञ्च युक्त नेत्रों से आंसू भरते हुए तुम्हारी कीर्ति करते हैं ॥ १९ ॥

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं।
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ॥
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा ।
निःसारमेतदखिलं त्वदृते यदि स्यात् २०

हे भगवति! तुम चंद्रमा में जगदाहलादिनी चांदनी हो, तुम सूर्य में दीप्ति हो। तुम पुरुष में चेतना(चित रूप)हो। तुम पवन में बल हो, तुम जल में स्वाद(द्रवता)हो तुम अग्नि में उष्म(गरमी)हो जो कुछ जगत में तुम से पृथक है वह तुच्छ है अर्थात तुम से (पृथक) भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ २० ॥

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं ।
सूते पयांसि यदऽहिर्धरणीं च धत्ते ॥
यद्वाति वायुरऽनलो यदुदर्चिराऽस्ते ।
तत्सर्वमऽम्ब तव केवलमाऽज्ञयैव ॥ २१ ॥

हे मातः! प्रकाशमान चन्द्र सूर्य तारे जो आकाश में घूमते हैं, मेघ जो अन्तरिक्ष (आकाश) में पानी बरसाता है। शेषनाग जो पृथिवी को धारण करता है, वायु जो चलती है, आग जिस की ज्योति ऊपर को उठती है, वह सब तुम्हारी केवल आज्ञा से ही होता है ॥ २१ ॥

सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं ।
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरऽनामरूपा ॥
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं ।
त्वन्नामरूपगणनाः सुकरीभवन्ति ॥ २२ ॥

हे गिरिजे! जिस काल में तुम संकोच वा जगत के उपशम को चाहती हो तिस काल मन और वाणी के तुम अगोचर बन जाती हो। वा समस्त जगत शून्य का स्थान बन जाता है। फिर जब तुम विकास वा उन्मेष दशा के सन्मुख होती हो तम्हारे नामों और रूपों की गणना सहज होती हैं अथवा सब प्रकार से नानाता प्रकट हो जाती है ॥ २२ ॥

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य ।
भ्रूकिंकरी कृत सरोजगृहा सहस्राः ॥
चिन्तामणि प्रचय कल्पित केलिशैले ।
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ॥ २३ ॥

हे देवि जो सुकृत पुरुष भोगों की लालसा से तुमको प्रणाम करते हैं वह भौंकि चढाने (भ्रूक्षेप) से सहस्र ऐश्वर्य पूर्ण ग्रंहो को वश में लाते हैं और चन्तामणि रत्नों से बनाए हुए क्राडा पर्वतो पर कल्प वृक्ष के भागीचों में चिरकाल तक विचारते हैं ॥२३॥

हन्तुं त्वमेव भवसि त्वदऽधीनमीश ।
संसारतापमऽखिलं दयया पशूनाम् ॥
वैकर्तनी किरणसंहतिरेव शक्ता ।
घर्मं निजं शमयितुं निजैव वृष्ट्या ॥ २४ ॥

हे ईशे! कर्म पाशों में फंसे हुए मनुष्य रूप पशुओं पर दया करके तुम्हारे अधीन जो त्रिविध ताप हैं उन का नाश करने के लिए तुम शक्ति मता हो जिस प्रकार सूर्य की किरण पंक्तियां अपनी ही वर्षण से अपनी घरमी को शांत करने के लिए सामर्थ्य वाली होती हैं २४

शक्तिः शरीरमधिदैवतमऽन्तरात्मा ।
ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा ॥
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं ।
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ॥ २५ ॥

तुम शक्ति हो, शरीर हो, अधिदैव हिरण्य गर्भ रूप हो, जीवात्मा हो, ज्ञान शक्ति हो, क्रिया शक्ति हो इन्द्रिय शक्ति हो आसन शक्ति हो, इच्छा शक्ति हो, अष्टादश विध ऐश्वर्य शक्ति हो, ग्रहादिकों का स्थान हो, परिवार देवता हो हे देवी! चन्द्रकला धारी महादेव की तुम क्या न हो अर्थात जो शिव का स्वरूप है वही तुम्हारा स्वरूप है २५

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्टा ।
विद्यानले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः ॥
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं ।
तासां विदूरतरमम्ब! पदं त्वदीयम ॥ २६ ॥

हे जगत्माता! पृथिवी में निवृति कला से प्रकट हो, जल में प्रतिष्टा कला से, अग्नि में विद्या कला से, पवन में शान्ति कला से, और आकाश में अति शान्ति कला से प्रकट हो यह कलायें जगत को धारन करती हैं यह निश्चय है परन्तु हे अम्ब! तम्हारे स्वरूप की जो कला (पदवी) हैं उन से तम्हारा स्वरूप बहुत दूर है अर्थात इन स्वरूपों से तम्हारा स्वरूप उत्कृष्ट है ॥ २६ ॥

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं ।
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये ॥
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकारा-
स्तर्कग्रहाः समथिनां प्रलयं न यान्ति ॥ २७ ॥

हे जगत रक्षा कारिणि! जब तक कि मत वादि तुम्हारे चरण कमल जोडी का स्थान अपने हृदय में स्वीकार न करें, तब तक उन के (दुर्बोध) दुर्ज्ञान वाले संशय और कुटिल आकार के तर्क वितर्क रूपी हट नाश नहीं हो जायेंगे ॥ २७ ॥

यद्देवयानपितृयानविहारमेके ।
कृत्वा मनः करणमंडलसार्वभौमम् ॥
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य ।
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् ॥ २८ ॥

हे पार्वति! जिस योगी पुरुष ने शुक्ल कृष्ण गति का विहार (प्राणापान का संकोच) करके और मन और इन्द्रियों का भी जय करके तुम्हारे मार्ग में प्रवेश किया; वह योगी ब्रह्मा आदि पांच कारणों के शिर को अपने आसन में लाता है। अर्थात वह इन पांच कारणों से भी ऊर्ध्व गति प्राप्ति करता है ॥ २८ ॥

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः ।
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः ॥
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं ।
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम ॥ २९ ॥

हे अम्ब! पृथिवी तत्व से लेकर माया तत्व तक जितनी स्थूल मूर्तियां हैं, किसी में भी तुम्हारी विभूति के समान विभूति नहीं है, जिस विभूति के महिमा का वर्णन वाणियों के स्वामी बृहस्पति अदि न कर सके उसही को मैंने गायन किया इस लिए क्षमा करने की आशा रखता हों ॥ २९ ॥

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब ! षडध्वशुद्धा–
वाऽऽप्लावनेषु भवतीमऽमृतौघवृष्टिम् ॥
श्यामां घटस्तनतटां सकलीकृतौ च ।
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥ ३० ॥

हे मातः! मंत्र वर्ण पद भवन कलातत्व यह षडध्व संसार है उसके शोधन(संहार)करने में तुम करोडों काल रूपी अग्नि के समान चमकने वाली; तम्हारे रूप में अन्तर्भाव करने वालों के लिए अमृत की वृष्टि बरसाने वाली; संसार की उत्पति के लिए प्रकाश और विमर्श रूप स्वरूप वाली श्यामा भगवती का जो ध्यान करते हैं वह जगत के गुरु बन जाते हैं ॥ ३० ॥

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचि-
दाऽनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम् ॥
त्वां श्विमाहुरपरे वयमामनाम ।
साक्षादपारकरुणां गुरमूर्तिमेव ॥ ३१ ॥

हे मातः! कई एक साधक तुमको परा विद्या(चिच्छक्ति)रूप से; कई आकाश (सर्व व्यापक) रूप से; कई आनन्द (आनन्दं ब्रह्म इति श्रुति) इस रूप से; कई माया (जगद्विकास) रूप से; कई जगत (विराठ)रूप से पुकारते हैं हम तु साक्षात पूर्ण दया रूप गुरु मूर्ति को ही मान कर प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं ।
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ॥
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः ।
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम ॥ ३२ ॥

वार २ स्तुति अथवा विविध प्रकार के कीर्तन से क्या है, तम्हारा जो वडा स्वरूप है उसी का सानिध्य नित्य मुक्ष साधक को प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

इति पञ्चस्तव्यां चतुर्थोऽम्बास्तवः । समाप्तः ।

—— §△§ ——

अजानन्तो यान्ति क्षयमऽवशमन्योन्यकलहै-
रऽमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्त समयिनः ॥
जगन्मातर्जन्म ज्वर भय तमः कौमुदि! वयं ।
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम ॥ १ ॥

हे जगत्माता! अज्ञानी मनुष्य आपस में लडते हुए अवश मर जाते हैं। मत वादी तुम्हारी माया से मोहित होकर जगत के बन्धनों में फंस कर बारं बार संसार में जन्म लेते हैं। जन्म लेने से जो ज्वर उतपन्न होता है तद्रूप जो तम (अंधेरा) उस की तुम प्रकाश रूपी हो हम सब हाथ जोड २ कर उसी भगवती को शरण हो जाते हैं ॥१॥

वचस्तर्कागम्य स्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्परुचे ॥
शिवस्याराध्याय स्तनभराविनम्राय सततं ।
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥ २ ॥

वाणी और मन की अगोचर, चैतन्य स्वरूप, परमानन्द अवस्था रूप, उत्कृष्ट ज्ञान स्वरूप, नील कमल के समान दीप्ति वाली, शिव की आराध्य देवी, ज्ञान क्रिया रूप स्तनभार को जगत आप्यायन के लिए जुकाती हुई किसी अलौकिक अन्तर्भूत तेज स्वरूप को सदा सर्वदा नमसकार हो ॥ २ ॥

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका ।
मुदश्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम ॥
शिवं पार्थत्राण प्रवण मृगयाकारगुणितं ।
शिवामऽन्वग्यान्तीं शवरमऽहमन्वेमि शवरीम ॥३॥

लटकते हुए रतियूँ के हार वाली । स्तन बार से झुकी हुई (मध्यलता)छाती वाली । निकले हुए पसीनूँ के नीले कमल समान चमकते हुए बूँदां वाली । अर्जुन देव की रक्षा पर झुके हुए शिकारी रूप शिव के पीछे २ जाने वाली शिकारिणी शिवा, को मैं प्रणाम करता हों ॥ ३ ॥

मिथः केशाकेशिप्रधन निधनास्तर्कघटना–
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाश्चाऽस्तविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते! देहि शरणं ॥
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवामिदम ॥ ४ ॥

तर्किक लोक वाद विवाद में आपस में केश कर्षण करते हुए लड मरते हैं । बहुत से पुरुष धन पदार्थ की प्राप्ति के लिए श्रद्धा और भक्ति से आपकी पूजा करते हैं । हे पर्वत की पुत्री! मुझ बिना सहाह के ऊपर आपही संतुष्ठ हो जाओ, सामने प्रकट होकर शरण दे दो । यः मेरा मन चारो ओर घूमते २ बहुत दीन हुआ है ॥४॥

शुनां वा वह्नेर्वा खखपरिषदो वा यदशनं ।
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति ॥
अमुष्मिन्विश्वासं विजहिहि ममाह्नाय वपुषि ।
प्रपद्येथाश्चेतः सकलजननीमेव शरणम ॥ ५ ॥

यह शरीर कुत्तों या अग्नि या पंक्षियों का भक्ष है । (कश्चित) कोई (कुचिदऽपि) कभी भी गिन्ती में नही लाता है, कि यह शरीर (कदा) कब,(केन)किस प्रकार और(कु)क्या है (इस लिए) हे मन! निश्चय से तुम इसकी श्रद्धा वा आशा छोड दो और जगत्माता के शरण में आजाओ ॥ ५ ॥

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी ।
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि! गृहिणी ॥
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया ।
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकसुखम् ॥ ६ ॥

अनादि अनन्त तथा अभेद प्रेम स्वरूप होने परभी शिव की प्रणव वती हो । विवाह विधि में तुम उसकी ग्रहिणी हो । पर्वत की पुत्री हो कर भी जीवों की उत्पत्ति में लगी हो । यह सब संसार प्रेम के महा नाटक का सुख है ॥ ६ ॥

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति! सदन्ये विदुरसत् ।
परे मातः! प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवय ॥
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि! सुधिय-
स्तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे! ॥७॥

हे भगवतिः सांख्य वाले तुम को तत्व रूप कहते हैं । वौद्ध (सत्) शिव रूप । तार्किक (असत्) जगत रूप कहते हैं । हे मातः शाक्त मार्ग के बुद्धिमान[सदऽसत्]शिव शक्ति रूप । हे देवि! वेदान्ती कहते हैं, कि कुछ भी नहीं है आत्मा से भिन्न । हे शिवे! अछे बुद्धि मानों का निश्चय है कि यह सब तुम्हारी माया का ही विस्तार है ७

तडित्कोटिज्योतिर्द्युति दलितषड्ग्रन्थि गहनं ।
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा ॥
किमऽप्य ष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमऽनिशं ।
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥ ८ ॥

करोडों विजलियों के समान दीप्ति की चमक से षठ् ग्रंथि रूप जंगल को छिन भिन्न करके स्वाधार [द्रव पद] में प्रवेश करते ही वापस अमृत वर्षण रूप शरीर से असामान्य अठतीस कला रूपजगत को विकसित हुई ज्ञान क्रिया रूप स्तन बार से झुकी हुई मेघ वर्णं श्याम तेज की मैं भजना करता हों ॥ ८ ॥

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्तस्त्रिवलय—
स्फुरद्विद्युद्वह्नि द्युमणिनियुताभ द्युतियुते ॥
षडश्रं भित्त्वादौ दशदलमऽथ द्वादशदलं ।
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते ॥९॥

गुदास्थान में मूलाधार चतुर्दल कमल के मध्यगत त्रिकोण उसके अंतर्गत परा शक्ति कुण्डलिनी सर्पाकार उर्ध्वमुखी सार्ध त्रिवल सहस्र बाल सूर्य समान दीप्तिमान, करोड़ों बिजलीयों के तुल्य चमक वाली, जो पहले षट्दल, फिर दशदल, फिर द्वादशदल फिर षोडश-दल कमलों को काटती हुई द्विदल पर पुहंची है, ऐसे स्वरूप को नमस्कार करता हों॥ ९ ॥

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरऽकुलमऽन्ये तव बुधाः ।
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमऽपरे ॥
चतुर्णामऽप्येषामुपरि किमपि प्राहुरऽपेर ।
महामाये! तत्त्वं तव कथमऽमी निश्चिनुमहे ॥१०॥

कई ज्ञानी पुरुष तुमको (कुल) षट् त्रिंशत् तत्वात्मक कहते हैं। कई बुद्धिमान (अकुल) परम शिव रूप ॥ कई आचार्य (कुल अकुल) शिव शक्ति रूप पुकारते हैं। कई (कौल) सब तत्वों का संयोग वा पूर्णाहंता स्वरूप कहते हैं। कई इन चारों रूपों से भी उपर असामान्य रूप कहते हैं । हे महा मया! तुम्हारा तत्व किस तरह से निश्चय में आसकता है ॥ १० ॥

षडऽध्वारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा ।
रुचा भस्मीकृत्य स्वपद् कमलप्रह्वशिरसाम् ॥
वितन्वानः शैवं किमऽपि वपुरिन्दीवर रुचिः ।
कुचाभ्यामाऽनम्रः शिवपुरषकारो विजयते ॥११॥

षट् मार्ग (भवन तत्व- कला वर्ण, पद,) रूप जंगल को प्रलय काल के करोडों सूर्यों के तुल्य प्रकाश से जलाकर भस्म करने वाले अपने नत मस्तक भक्तों को कल्यान चाहने वाली शिव की असामान्य रूप नील कमल जैसी दीप्ति वाली योग और ध्यान रूप स्तनों से झुकी हुई शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति नितराम जय होवे ॥ ११ ॥

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमऽरुण तर वासःकिसलयां ।
समुन्मीलन्मुक्ताफल बहुल नेपथ्यकुसुमाम् ॥
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबक नमितां कल्पलतिकां ।
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् १२

निर्मल और श्याम स्वरूप अति रक्त वस्त्रो को धारण करती हुई, पत्र सहित मोतियो के फल वाले अनेक सुगंध वाले विकसित पुष्पों से अलंकृत, ज्ञान क्रिया रूप दो स्तनों के भारे गुछों से झुकी हुई, कल्प वृक्ष की लता जैसी तुम को जो एक बार ध्यान करते हैं। वह शिव रूप चिंतामन रत्न का स्थान पाते हैं ॥ १२ ॥

प्रकाशानन्दाभ्यामऽविदितचरीं मध्यपदवीं ।
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन् ॥
प्रविश्योर्ध्वं नादं लय दहन भस्मीकृतकुलः ।
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब! प्रविशति ॥१३॥

ज्ञान क्रिया से (अविदित चरीं वा अज्ञात हर्या) विमुख रह कर सुषम्णा मार्ग में प्रवेश करके, इसी चन्द्र सूर्य नामी प्राणापान के द्वन्द को ग्रास करके (ऊर्धनाद) पर प्रकाश में प्रवेश करके(लय) चिद्विमर्श के (दहन) आग से (कुलं) अहं भाव को भस्म करके तुम्हारे अनुग्रह से साधक जन (अकुलं) आविनाशी शिव पद में प्रवेश करते हैं ॥ १३ ॥

षडाधारावर्तैरऽपरिमितमंत्रोर्मिपटलै-
श्चलन्मुद्राफेनैर्बहुविधलसद्दैवतझषैः ॥
क्रमस्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी ।
भवानि! प्रत्यग्रा शिवचिदऽमृताब्धिप्रणयिनी १४

हे भवानि! षट शास्त्र रूप घुंवरों से असंख्य मंत्र रूप लहरों की मालाओं से, मुद्रा रूप चंचल फेनों से बहुत प्रकार के भाग्य वा कर्म रूप मत्स्यों से, क्रम रूप छोटी नालियों से पूर्ण, परनाद रूप अमृत नदी बहती हुई तुम शिव रूप चित् समुद्र में बड़े वेग से प्रेम करती हो (बहती हो) ॥ १४ ॥

महीपाथोवह्निश्वसन वियदात्मेन्दुरविभि–
र्वपुर्भिर्ग्रस्तांशैरऽपि तव कियानम्ब! महिमा ॥
अमून्यालोक्यन्ते भगवति! न कुत्राप्यणुतरा–
मऽवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१५॥

पृथिवि, जल, अग्नि, वायू आकाश जीवात्मा, चंद्रमा सूर्य जैसे [अभून्य वपुर्भिः] इन आकृतियो से, जो तुम में संपूर्ण ओत प्रोत हैं तुम्हारा महिमा [विस्तार] हे मातः! कितना है, अनुभव नहीं होता है। हे भगवति! तुम्हारे परमाकाश में अनुमात्र भी उनकी अवस्था वा भाव की गिन्ती वजूद में नहीं आती है। किन्तु तुम अचर, अप्रमेय, अखंड, परन्तु वह चर प्रमेय और अवयवी हैं ॥ १५ ॥

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं ।
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरींकोटिलुठितम ॥
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया ।
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम ॥ १६ ॥

हे मातः! मनुष्य, पशुपंक्षी और देवता यह तीन लोक, संसार समुद्र में डूबे हुए हैं। और सतु, रज, तम, तीन गुणो की करोडों लहरियों में धूसते हैं। यदि इस में आप की दया दृष्टि होती है तु यह शरीर धारी झट् पट् परमानन्द स्वरूप पाते हैं ॥ १६ ॥

कलां प्रज्ञामाद्यां समयऽमनुभूतिं समरसां ।
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम् ॥
प्रमाणं निर्वाणं परम मतिभूतिं परगुहां ।
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः ॥१७॥

मुणि जन तुझ जगत्माता को क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति, आदि भूत, सदाचार, अनुभव स्वरूप, सब में एकरस, उपदेशक, परं परा उपदेश, शिक्षा, गुप्त वार्ता कथन, भगवत्कथा, प्रत्यक, अनुमान उपमा रूप इप्रमाण, मोक्ष, परमसिद्धान्त, शास्त्रमर्याधा, और विद्या शक्ति, इन नामों से पुकारते हैं ॥ १७ ॥

प्रलीने शब्दौघे तदऽनुविरते बिन्दुविभवे ।
ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनिभिरऽनुपाधिन्युपरते ॥
श्रिते शाक्ते पर्वण्यऽनुकलित चिन्मात्रगहनां ।
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् १८

योगि जन प्रत्याहार से शब्दादि विषयों का निरोध करके (विन्दुविभवे विरते) पुर्यष्ट ज्ञान को चिदाकाश में लीन करके, (तत्त्वे) आत्म स्वरूप को अष्ठ वर्गात्मक उपादि रहित नाद रूप परामर्श में उपराम करते हुए शाक्त मार्ग का आश्रय लेते हुए चिन्मात्र रहस्य का विमर्श करते हुए स्वाभाविक शिव स्वरूप का आस्वाद करते हैं ॥ १८ ॥

परानन्दाकारां निरऽवधि शिवैश्वर्यवपुषं ।
निराकार ज्ञान प्रकृतिमऽनवच्छिन्न करुणाम् ॥
सवित्रीं भूतानां निरऽतिशयधामा स्पद्पदां ।
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम १९

परावस्था मूर्ति, निरावर्ण, निर्विकार, शिव की ऐश्वर्य मूर्ति, निराकार ज्ञान मूर्ति, निरन्तर दया मूर्ति, जीवों को उत्पन्न करने वाली परम शिव के पद पर आरूह होने वाली, ऐसे तुम्हारे स्वरूप को भजन करने वाले साधकों को संसार और मोक्ष पद एक जैसा है ॥ १९ ॥

जगत्काये कृत्वा तमऽपि हृदये तच्च पुरुषे ।
पुमांसं बिन्दुस्थं तमऽपि परनादाख्यगहने ॥
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदऽपि परमानन्दविभवे ।
महाव्योमाकारे त्वदनुभवशीलो विजयते ॥ २० ॥

हे जगत्माता! जगत काया में, काया को हृदय में हृदय को पुरुष वा जीवात्मा में, जीवात्मा को बिंदुवा चित्स्वरूप में, विन्दु को दुर्गम नाद वा विमर्श रूप में, नाद को ज्ञान में ज्ञान को स्वात्म प्रकाश में पूर्ण करके हे महाकाश मूर्ति! तुम्हारे अनुभव शील भक्त जन तुम्हारे ऐसे शून्य रूप में लय वा तन्मय होते हैं ॥ २० ॥

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि।
विचित्रे विश्वाधे विनयसुलभे वेदगुलिके॥
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे।
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम २१

हे क्रिया शक्ति रूपे! विद्या शक्ति रूपे! विविध सिद्धान्त वा आचार रूपे! हे वेद मातः! विचित्र रूपे! हे जगत्मातः! हे भक्ति सुलभे! वेद सार भूते! हे आज्ञा रूपे! स्वभाव रूपे! शिव सायुज्य दायिने! हे कल्याण कोशे! शिव पत्नि! हे मातः! मुझे अपनी अचल भक्ति बडावो॥ २१॥

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले।
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम्॥
अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब गिरिश।
शिवस्थायाः शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् २२

ब्रह्मा का शिर काटकर उसको हाथ का पात्र बनाया। विष्णु का शिर त्रिशूल में परोकर कन्धे का भूषण बनाया। हे अम्ब! महादेव ने गले को विष से सजाया है। जो शक्ति शिव में है। वह सब यह जगत है। जिस को तुम ने विकसित किया है॥ २२॥

विरिञ्च्याख्या मातः ! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि ।
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विद्धासीश्वरदशाम ॥
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी ।
त्वमेवैकानेका भवसि कृतभेदैर्गिरिसुते ॥ २३ ॥

हे मातः ! ब्रह्मा रूप से तीन लोकों की उत्पत्ति, विष्णु रूप से पालन, रुद्र रूप से संहार करती हो । तुमही ईश्वर देशा को धारण करती हो । सदा शिव रूप बन कर पाश समूहों को काट कर शिव के साथ तादात्म्य पदवी देती हो । हे गिरि सुते ! तुम एक होकर भी भेद दृष्टि से अनेक होती हो ॥ २३ ॥

मुनीनां चेतोभिः प्रमृतिकाषायैरपि मनाग् ।
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकितचाकितैरम्ब सततम् ॥
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे ।
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति पदम ॥२४॥

हे अम्ब ! जिन मुणियों ने चित्त से राग द्वेषादिकों को मथन किया है । वह अत्यन्त डर २ कर अनुमात्र भी स्पर्श करने को असमर्थ हैं । (तिसपर)उपनिषदादि ग्रन्थ जो स्वभाव से ही(कठिन) दुबोध हैं, हे पार्वति ! वह किस प्रकार तुम्हारे कोमल चरण कमलों के स्थान को पा सकते हैं ॥ २४ ॥

तडिद्वल्लीं नित्याममृतसरितं पाररहितां ।
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिमहनाम ॥
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननी-
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम २५

भगवती को साधक जन नित्य विद्युल्लता रूप अपार अमृत नदी रूप, निर्मल चांदनी रूप गुण त्रिय रहित उरडलिनी रूप, अनिर्वचनी विद्या रूप, कुमारी शोडशी रूप, जगत्माता अनवच्छि लक्ष्मी रूप से पुकारते हैं ॥ २५ ॥

शरीरं क्षित्यम्भःप्रभृतिरचितं केवलमिदं ।
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति ॥
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं ।
शरीराहंकारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ॥ २६ ॥

यह शरीर तु पृथिवी जल आदि महा भूतो से बना हुवा है चेतन होने से सुख दुःख को आनुभव करता है। हे गिरिसुते! यह प्राणी स्पष्ट रुप से जानता भी है परन्तु तुम्हारे अनुग्रह विना शरीर के अभिमान को नही छोढ सकता है ॥ २६ ॥

पिता माता भ्राता सुहृदनुचरः सद्म गृहिणी ।
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति ॥
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं ।
महाज्योत्स्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ॥२७॥

बाप मां भाई बन्धु, नौकर, घर, स्त्री, शरीर बेटा मित्र तथा धन, छोड देते हैं । तु उस समय हे चित्प्रकाशात्मक मातः यम भय तथा गाढ अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए मुझ को दया करके सन्मुख होकर सहाय करो ॥ २७ ॥

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः ।
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया ।
अनाद्यन्ता शम्भोरऽपृथगपि शक्तिर्भगवती ।
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥२८॥

हे सकल जगत्मातः ! तुम पहले दक्षप्रजापत की पुत्री हुई । उस को दोषी जान कर छोड दिया । फिर हिमालय की पुत्री बनी हे भगवती ! तुम नित्योद्यत शम्भु के साथ अनादि अभिन्न पराशक्ति हो के भी विवाह पर उस की पत्नी बनी । तुम्हारे चरित्रों को कोन जाने कोई नहीं जानता यह आश्चर्य है ॥ २८ ॥

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः ।
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका ॥
शिवादि क्षित्यन्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे ।
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति २९

हे भगवति! सूर्य चन्द्रमा अग्नि आदि तुम्हारे दीप्ति के कण हैं। परं ब्रह्म निश्चय करके तुम्हारे आनन्द कणों के सामने सूक्ष्म तर हैं। शिव तत्व से पृथिवी तत्व तक समस्त प्राणियों में कुण्डलि-निरूप से तुम स्थित हो। तुम भक्तों के हृदय में प्रकट रूप से दिखाई देती हो यह आश्चर्य है॥ २९॥

त्वया यो जानीते रचयति भवत्तैव सततं ।
त्वयैवेच्छत्यम्ब! त्वमसि निखिला यस्य तनवः ॥
गतः स्वाम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती ।
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम् ३०

हे अम्ब! तुम्हारे हेतु से जो नित्य जाना जाता है। तुम्हारे हेतु से जो जगत की रचना करता है। तुम्हारे ही से जो इच्छा करता है। तुम जिसके समस्त अवयव (अष्ट मूर्तियां) हो। तुम्हारे सन्मुख हो जाने से वही शम्भू विकास में आता है। और तुम को छोड देने से संकुचित हो कर परमाऽकाश में लीन होता है। शिव के साथ तेरा कैसा आश्चर्य मय व्यवहार है॥ ३०॥

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं ।
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलं गुह्यमगुहम् ॥
दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवतीं ।
सदा पश्यन्तत्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम ३१

आगे, पीछे, बीतर, बाहिर अपरिमित (वडी) परिमित (छोटी) (पर) सब से वडा (स्थूल) मोटा (सूक्ष्म) महीन (सकुल) शक्ति रूप (अकुल) शिव रूप (गुप्त) पूशीदा (प्रकट) जाहिर, समीप, दूर सत् रूप, असत् रूप यह द्वन्द्व कलना रूप विश्व है, हे भगवति ! तुम तीन लोक के (क्षोभ) सृष्टि स्थिति संहार करने वाली हो । तुम इस जगत पर सदा आज्ञा करने वाली दिखाई देती हो ॥ ३१ ॥

मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः ।
पयोधौ कल्लोलप्रतिहितमहिम्नीव पृषतः ॥
उदेत्योदेत्याम्ब त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥३२॥

सूर्य के किरणों के मानन्द अग्नि की चिंगारियों के मानन्द । समुद्र के महा तरंगों के क्षोभ से उत्पन हुए जो असंख्य विन्दु उन के मानन्द । हे अम्ब! तुम में ही शिवादि क्षति पर्यन्त तत्वात्मक जगतों के समूह प्रति कल्प वार वार

अपने अपने कर्यों सहित उत्पन हो होकर नाश होते जाते हैं ॥३२॥

विधुर्विष्णुर्ब्रह्मा प्रकृतिरऽणुराऽत्मा दिनकरः ।
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगत मुनिराऽकाशमऽनिलः ॥
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां ।
विकल्पैरेभिस्त्वामऽभिदधति सन्तो भगवतीम् ३३

चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, माया, जीव, जीवात्मा, सूर्य, स्वभाव, जैनदेव, बुद्ध देव, मुनि, आकाश, वायु, शिव, और शक्ति, यः सब अपने अपने विकल्पों के अनुसार वेद विषय बने हुए नामों से, सन्तजन तुझ भगवती को पुकारते हैं ॥ ३३ ॥

प्रविश्य स्वं मार्ग सहजदयया दैशिकदृशा ।
षडध्वध्वान्तौघ च्छिदुर गणनातीतकरुणाम् ॥
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं ।
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम ॥३४॥

भाग्यवान पुरुष स्वाभाविक दया और सद्गुरु की अनुग्रह दृष्टि से शाक्त मार्ग में प्रवेश कर के षट् मार्ग (भवन तत्व कला वर्ण पद मंत्र) वाले संसार के अंधकार को काटने में अत्यन्त दयाशील परमानन्द मूर्ति और कल्याण मूर्ति भगवती को अपने आप में ही (चिरं) नित्योद्यत पाते हैं ॥ ३४ ॥

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी ।
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमऽणिमादिर्गुणगणः ॥
अविद्या त्वं विद्या त्वमऽसि निखिलं त्वं किमपरं ।
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ॥३५॥

हे भगवति! तुम शिव हो- शक्ति हो- तुम समय (काल) रूप हो, तुम समय जानने वाली हो- तुम आत्मा हो तुम दीक्षा हो- तुम अणिमादि गुण समूह हो- तुम विद्या और अविद्या हो- तुम समस्त जगत के पदार्थ हो, तुम से पृथक कुछ भी तत्व नहीं जो हमारे दृष्टि में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे ॥ ३५ ॥

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया–
द्दते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमाऽसाद्य गिरिशम् ॥
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वां विदितवान् ।
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥ ३६ ॥

हे मातः! संचित कर्मों के समाप्त होने पर अनगिनत पुरातन जन्मों से इस जन्म के अन्त (नाश) होने पर गुरु शिव के स्वरूप को पाकर (तन्मय होकर), शक्ति स्वरूप को पाकर, क्षुद्र प्राणी होकर भी, तम्हारे स्वरूप को जानता था उस कारण तम्हारी पूजा की जो स्तुति है ॥ उसी के बनाने में दिनों को बिता दूंगा ॥ ३६ ॥

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या ।
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम् ॥
तस्मिन्नन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां ।
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥३७

स्वाधिष्ठान चक्र में छः पत्तों वाले कमल का जो उदय है । उस की जो कर्णिका (बीजकोश) रूप योनि है उस के मध्य में जो प्रसिद्ध ओंकार पीठ है । उस के भीतर तिरछी आकार वाली सर्पिनी जो प्रकट है । ऐसी श्याम सुन्दर मूर्ति धारण करने वाली जगत्माता को मैं (साधक) भावना [चिन्तन] करता हों ॥ ३७ ॥

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के ।
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ॥
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं ।
सकलजननि सा त्वं पाहि मामित्यवश्यम ॥ ३८॥

पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश चन्द्रमा (मन) रवि (बुद्धि) यजयान(अहंकार) यह एक ही शक्ति आठ मूर्तियों में बांटी गई है । वह एक ही शक्ति जीव और भूत रूप संसार को धारण और पालन करती है, हे जगत्मातः वही तू अवश्य मेरा पालन करो ॥ ३८ ॥

इति श्री पंचस्तव्यां सकलजननीस्तवः पंचमः ।

समाप्ता चेयं पञ्चस्तवी ॥

